इतरा दे करतार तो फेर नहीं बोलणां... । यह भी कामना की गई है : बीकाणै काचर हुवै, मूंग मोठ मारवाड़। जैसाणै में जल भला, जोधाणै झालरां परवाड़... ।

खंड-परखंड की सराहनीय शोभा

राजस्थान का वैविध्य यहां के साहित्य में अनेक प्रकार से बिखरा हुआ मिलता है। इसमें देश और उनके नगरों, ग्रामों का सौन्दर्य, सरोवर, कूप, वापी, नदियों, वाटिकाओं, वनोद्दीप्त पर्वत और अनेक क्रीड़ाओं का वर्णन मुख्य हैं। वनों में पुष्पादि उगाने वाले माली के सम्बोधन भरे गीत इस प्रदेश की अनूठी विशेषता है-

धानी के घर धन बंटे रे, ज्यूं कूवै को नीर। सासुरसां कै खाटवै रे, सब काहू को सीर।।

सिर मटका केसर भरी रे चलै गयंद ज्यूं आळ। पाछी मुड़कर देखती रे कद को खड्यो जमाल... ।

यहां विहार करने वाले मोर, कबूतर, सुआ, कुरजां और कौआ जैसे परिंदों से अपने साजन आदि की खबर लाने का विवरण अनेक गीतों में है और इस बहाने पक्षियों की क्रीड़ाओं और मानव की मनोदशा का जिक्र भी मिल जाता है -

उड़ जा रे काग गिगन का वासी, खबर तो लाव म्हारे राजन री। नांव नहिं जाणूं म्हें तो गांव नहिं जाणूं, सूरत ना जाणूं थारै राजन री, नांव बतास्यां, गांव बतास्यां, सूरत बतास्यां म्हारे राजन री। तीखी तीखी नाक, फिरंगी का नौकर, चाल चलै उमरावां की... ।

पशु चराने की बातें भी यहां लोकप्रिय रही हैं। मां-बेटे की एक बात है :

लाला गाय उछैर, खूंटी, बंधी, भूखां मरै, संग रा साथीड़ा खेतां में पूग्या, ज्यारी गायां चारो चरै।

इस पर बेटे का उत्तर है-

म्है पगां उबाणो मेरी मांय, पगळ्यां में कांटा गड़ै, म्हनै मोचा मंगादै अब की सात गलियां में मोजी फिरै, लाल गाय उछेर... ।

यहां मरुभूमि के भाटियां, लंकाथली, भूरट, जांगल, हाड़ौती, ढूंढ़ाड़, मेवाड़, मेवल, खड्ग, वागड़, मेरवाड़ा, मारवाड़, गोड़वाड़ आदि दर्जनों उपक्षेत्र हैं, जिनका अपना-अपना इतिहास तो रहा ही है, वहां के रणक्षेत्रों, रणबांकुरों के शौर्य, मर्यादाओं, कीर्ति, प्रताप, दुष्टदमन, शिष्ट पालन, सन्धि, विग्रह, धर-कूंचा-धर मंजला प्रयाण-चढ़ाई, आयुध संचालन, धर्मप्रेम, प्रजा वात्सल्य, ऐश्वर्य आदि भी वर्णन भी कंठ-दर-कंठ मिलता है। बिणजारा के गीतों में देस-दिसावर का वर्णन और वहां की यात्राओं का हाल मिलता है-

बिणजारा रे लोभी, लोग तो दिसावर नै जाय, तनै घर बैठ्या कूं सरै।

बिणजारी ए लोभण, औरां कै पल्लै छै दाम, म्हारै तो पल्लै काय नहीं,

बिणजारी ए लोभण, लेज्या गळा के रौ हार, बांवै पग रौ लेज्या टोडरो... ।

आस्वाद का आनन्द

इन क्षेत्रों के खाड़ों, खेड़ा, सर, गुड़ा जैसे गांव, नगर, किलों, जन बहुलता, बोलियों, जलस्रोतों, वहां के जनजीवन की गतिविधियों का विवरण भी गीतों का वर्ण्य बना है। गांवों की उपज-निपज, सरोवरों का सुख, वृक्षों का वैभव, पशुधन प्रियता, ग्रामीणों की मस्ती, सरलता, अज्ञानता, खेत-खलिहानों, क्यारियों, उत्पादों का वर्णन लोक का लालित्य लिए मिलता है। यहां के भोजन का एक चित्र इस लोकगीत में अपनी खास छटा लिए है-

बाजरा री रोटी पोयी, ग्वारफली रौ साग रे, जीमै जीमै सायबौ जीमावै घर री नार रे, कूड़ा मांय रोटी पड़ी रे, केलड़ी में मंडको, कांसी वरणा वाटका में दही रो सबड़को, कहो तो रोटी घालूं, कहो तो मंडको, कहो तो साग घालं, कहो तो सबड़को, हांडी मांय राबड़ी बिलोवणी में छाछ, साबाली में मीठी सक्कर खावौ जी सिरदार, कहदो तो घालां राबड़ी, म्हे कहो तो छाछ, कहो तो मीठी सक्कर, तरसै थांठी जाड़.... ।

राजस्थान के विशिष्ट खाद्य में खीचड़ा की अपनी पहचान है। खीचड़े के गीतों की छटा पूरे ही प्रदेश में है-

म्हारो मीठो लागै खीचड़ो, म्हारौ चोखो लागै खीचड़ो, मीठो खीचड़ो। छुलक्यो छांट्यो बाजरौ, म्है दळी ए मोठां री दाळ, म्हारौ मीठो लागै खीचड़ो, म्हारो चोखो लागै खीचड़ो। जोधाणै सूं मंगवास्यां बाजरियो, जैसाणै सूं आसी घिरत, म्हारौ मीठो लागै खीचड़ो... ।

इसी तरह मांगलिक भोजन में लपसी का मुकाबला नहीं। लपसी स्थूलीपाक के नाम से वैदिक आहार रहा है। राजस्थान में नैवेद्य से लेकर थाल-भांणा के भोजन तक लपसी के कौर लेना शकुन माना जाता है-

चढ़ो तो रांधू लापसी, रहो तो जिनवै रा भात, चढ़ो तो ओढूं चूंदड़ी, रहो दखणी रो चीर, जींम चंढाला थारी लापसी, कोई आय नै जीमसां जिनवै रा भात, निरख चंढाला थांरी चूनड़ी, कोई आय नै निरखालां दखणी रो चीर... ।

राजस्थान के पंचकूटा और पंचमेला की सब्जियां बहुत प्रसिद्ध है। जिस समय देशभर में एक वनस्पति का साग खाया जाता था, राजस्थान के निवासी पंचमेला की सब्जियों का स्वाद ले रहा था। ग्वारफली, गाजर-मूली, कांदा, बोर, कैर, टींटा, खोखा, फोगला, सांगरिया आदि का स्वाद राजस्थान ने बाहर वालों को दिया है। इनके साथ धनिया, पौदीना, बथुआ, तोरी, करेला और कांकड़ करेला या बाड़ करेला का स्वाद भी यहां नैसर्गिक रूप से हुए और उनका स्वाद गीतों में गेय हुआ है-